सूरदास का व्यक्तित्व कृतित्व एवं उनके काव्य में वात्सल्य चित्रण

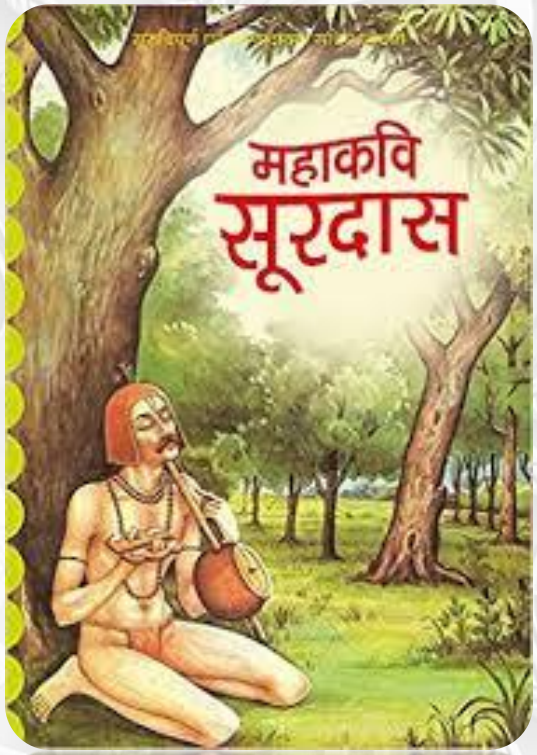

Submitted by :

Dr. Nidhi Bal

Assistant Professor in PG Department of Hindi
Hans Raj Mahila Maha Vidyalaya,
Jalandhar.

सूरदास का नाम कृष्ण भक्ति की अजस्र धारा को प्रवाहित करने वाले भक्त कवियों में सर्वोपरि है। हिन्दी साहित्य में भगवान श्रीकृष्ण के अनन्य उपासक और ब्रजभाषा के श्रेष्ठ कवि महात्मा सूरदास हिंदी साहित्य के सूर्य माने जाते हैं। हिंदी कविता कामिनी के इस कमनीय कांत ने हिंदी भाषा को समृद्ध करने में जो योगदान दिया है, वह अद्‌वितीय है। सूरदास हिंन्दी साहित्य में भक्ति काल के सगुण भक्ति शाखा के कृष्ण-भक्ति उपशाखा के महान कवि हैं।

जीवन परिचय

सूरदास की जन्मतिथि एवं जन्मस्थान के विषय में मतभेद

सूरदास की जन्मतिथि एवं जन्मस्थान के विषय में विद्वानों में मतभेद है। "साहित्य लहरी' सूर की लिखी रचना मानी जाती है। इसमें साहित्य लहरी के रचना-काल के सम्बन्ध में निम्न पद मिलता है -

मुनि पुनि के रस लेख।

दसन गौरीनन्द को लिखि सुवल संवत् पेख॥

इसका अर्थ संवत् १६०७ ईस्वी में माना गया है, अतएव "साहित्य लहरी' का रचना काल संवत् १६०७ वि० है। इस ग्रन्थ से यह भी प्रमाण मिलता है कि सूर के गुरु श्री वल्लभाचार्य थे।

सूरदास का जन्म सं० १५३५ ईस्वी के लगभग ठहरता है, क्योंकि बल्लभ सम्प्रदाय में ऐसी मान्यता है कि बल्लभाचार्य सूरदास से दस दिन बड़े थे और बल्लभाचार्य का जन्म उक्त संवत् की वैशाख् कृष्ण एकादशी को हुआ था। इसलिए सूरदास की जन्म-तिथि वैशाख शुक्ला पंचमी, संवत् १५३५ वि० समीचीन जान पड़ती है। अनेक प्रमाणों के आधार पर उनका मृत्यु संवत् १६२० से १६४८ ईस्वी के मध्य स्वीकार किया जाता है। रामचन्द्र शुक्ल जी के मतानुसार सूरदास का जन्म संवत् १५४० वि० के सन्निकट और मृत्यु संवत् १६२० ईस्वी के आसपास माना जाता है।

श्री गुरु बल्लभ तत्त्व सुनायो लीला भेद बतायो।

सूरदास की आयु "सूरसारावली' के अनुसार उस समय ६७ वर्ष थी। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' के आधार पर उनका जन्म रुनकता अथवा रेणु का क्षेत्र (वर्तमान जिला आगरान्तर्गत) में हुआ था। मथुरा और आगरा के बीच गऊघाट पर ये निवास करते थे। बल्लभाचार्य से इनकी भेंट वहीं पर हुई थी। "भावप्रकाश' में सूर का जन्म स्थान सीही नामक ग्राम बताया गया है। वे सारस्वत ब्राह्मण थे और जन्म के अंधे थे। "आइने अकबरी' में (संवत् १६५३ ईस्वी) तथा "मुतखबुत-तवारीख' के अनुसार सूरदास को अकबर के दरबारी संगीतज्ञों में माना है।

क्या सूरदास जन्मान्ध थे ?

सूरदास श्रीनाथ की "संस्कृतवार्ता मणिपाला', श्री हरिराय कृत "भाव-प्रकाश", श्री गोकुलनाथ की "निजवार्ता' आदि ग्रन्थों के आधार पर, जन्म के अन्धे माने गए हैं। लेकिन राधा-कृष्ण के रूप सौन्दर्य का सजीव चित्रण, नाना रंगों का वर्णन, सूक्ष्म पर्यवेक्षणशीलता आदि गुणों के कारण अधिकतर वर्तमान विद्वान सूर को जन्मान्ध स्वीकार नहीं करते।

श्यामसुन्दर दास ने इस सम्बन्ध में लिखा है - "सूर वास्तव में जन्मान्ध नहीं थे, क्योंकि शृंगार तथा रंग-रुपादि का जो वर्णन उन्होंने किया है वैसा कोई जन्मान्ध नहीं कर सकता।" डॉक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है - "सूरसागर के कुछ पदों से यह ध्वनि अवश्य निकलती है कि सूरदास अपने को जन्म का अन्धा और कर्म का अभागा कहते हैं, पर सब समय इसके अक्षरार्थ को ही प्रधान नहीं मानना चाहिए।"

रचनाएँ

सूरदास जी द्वारा लिखित पाँच ग्रन्थ बताए जाते हैं:

(१) **सूरसागर** - जो सूरदास की प्रसिद्ध रचना है। जिसमें सवा लाख पद संग्रहित थे। किंतु अब सात-आठ हजार पद ही मिलते हैं।

(२) **सूरसारावली**

(३) **साहित्य-लहरी** - जिसमें उनके कूट पद संकलित हैं।

(४) **नल-दमयन्ती**

(५) **ब्याहलो**

उपरोक्त में अन्तिम दो अप्राप्य हैं।

नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हस्तलिखित पुस्तकों की विवरण तालिका में सूरदास के १६ ग्रन्थों का उल्लेख है। इनमें सूरसागर, सूरसारावली, साहित्य लहरी, नल-दमयन्ती, ब्याहलो के अतिरिक्त दशमस्कंध टीका, नागलीला, भागवत्, गोवर्धन लीला, सूरपचीसी, सूरसागर सार, प्राणप्यारी, आदि ग्रन्थ सम्मिलित हैं। इनमें प्रारम्भ के तीन ग्रंथ ही महत्त्वपूर्ण समझे जाते हैं, साहित्य लहरी की प्राप्त प्रति में बहुत प्रक्षिप्तांश जुड़े हुए हैं।

" साहित्य लहरी, सूरसागर, सूर की सारावली।

श्रीकृष्ण जी की बाल-छवि पर लेखनी अनुपम चली।।"

सूरसागर का मुख्य वर्ण्य विषय श्री कृष्ण की लीलाओं का गान रहा है।

सूरसारावली में कवि ने जिन कृष्ण विषयक कथात्मक और सेवा परक पदों का गान किया उन्ही के सार रूप में उन्होंने सारावली की रचना की है।

सहित्यलहरी मैं सूर के दृष्टिकूट पद संकलित हैं।

सूरदास की काव्यगत विशेषताएँ

सूर के अनुसार भगवान श्रीकृष्ण के अनुग्रह से मनुष्य को सद्गति मिल सकती है। अटल भक्ति कर्मभेद, जातिभेद, ज्ञान, योग से श्रेष्ठ है।

सूर ने वात्सल्य, श्रृंगार और शांत रसों को मुख्य रूप से अपनाया है। सूर ने अपनी कल्पना और प्रतिभा के सहारे कृष्ण के बाल्य-रूप का अति सुंदर, सरस, सजीव और मनोवैज्ञानिक वर्णन किया है। बालकों की चपलता, स्पर्धा, अभिलाषा, आकांक्षा का वर्णन करने में विश्व व्यापी बाल-स्वरूप का चित्रण किया है। बाल-कृष्ण की एक-एक चेष्टा के चित्रण में कवि ने कमाल की होशियारी एवं सूक्ष्म निरीक्षण का परिचय दिया है-

मैया कबहिं बढैगी चौटी?

किती बार मोहिं दूध पियत भई, यह अजहूँ है छोटी।

सूर के कृष्ण प्रेम और माधुर्य प्रतिमूर्ति है। जिसकी अभिव्यक्ति बड़ी ही स्वाभाविक और सजीव रूप में हुई है।

जो कोमलकांत पदावली, भावानुकूल शब्द-चयन, सार्थक अलंकार-योजना, धारावाही प्रवाह, संगीतात्मकता एवं सजीवता सूर की भाषा में है, उसे देखकर तो यही कहना पड़ता है कि सूर ने ही सर्व प्रथम ब्रजभाषा को साहित्यिक रूप दिया है।

सूर ने भक्ति के साथ श्रृंगार को जोड़कर उसके संयोग-वियोग पक्षों का जैसा वर्णन किया है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।

सूर ने विनय के पद भी रचे हैं, जिसमें उनकी दास्य-भावना कहीं-कहीं तुलसीदास से आगे बढ़ जाती है-

हमारे प्रभु औगुन चित न धरौ।

समदरसी है मान तुम्हारौ, सोई पार करौ।

सूर ने स्थान-स्थान पर कूट पद भी लिखे हैं।

प्रेम के स्वच्छ और मार्जित रूप का चित्रण भारतीय साहित्य में किसी और कवि ने नहीं किया है यह सूरदास की अपनी विशेषता है। वियोग के समय राधिका का जो चित्र सूरदास ने चित्रित किया है, वह इस प्रेम के योग्य है

सूर ने यशोदा आदि के शील, गुण आदि का सुंदर चित्रण किया है।

सूर का भ्रमरगीत वियोग-शृंगार का ही उत्कृष्ट ग्रंथ नहीं है, उसमें सगुण और निर्गुण का भी विवेचन हुआ है। इसमें विशेषकर उद्धव-गोपी संवादों में हास्य-व्यंग्य के अच्छे छींटें भी मिलते हैं।

सूर काव्य में प्रकृति-सौंदर्य का सूक्ष्म और सजीव वर्णन मिलता है।

सूर की कविता में पुराने आख्यानों और कथनों का उल्लेख बहुत स्थानों में मिलता है।

सूर के गेय पदों में हृदयस्थ भावों की बड़ी सुंदर व्यजना हुई है। उनके कृष्ण-लीला संबंधी पदों में सूर के भक्त और कवि हृदय की सुंदर झाँकी मिलती है।

सूर का काव्य भाव-पक्ष की दृष्टि से ही महान नहीं है, कला-पक्ष की दृष्टि से भी वह उतना ही महत्वपूर्ण है। सूर की भाषा सरल, स्वाभाविक तथा वाग्वैदिग्धपूर्ण है। अलंकार-योजना की दृष्टि से भी उनका कला-पक्ष सबल है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने सूर की कवित्व-शक्ति के बारे में लिखा है-

सूरदास जब अपने प्रिय विषय का वर्णन शुरू करते हैं तो मानो अलंकार-शास्त्र हाथ जोड़कर उनके पीछे-पीछे दौड़ा करता है। उपमाओं की बाढ़ आ जाती है, रूपकों की वर्षा होने लगती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सूरदास हिंदी साहित्य के महाकवि हैं, क्योंकि उन्होंने न केवल भाव और भाषा की दृष्टि से साहित्य को सुसज्जित किया, वरन् कृष्ण-काव्य की विशिष्ट परंपरा को भी जन्म दिया।

सूरदास का वात्सल्य वर्णन

सूरदास भक्तिकाल के कृष्ण काव्य-धारा के प्रतिनिधि कवि हैं। भगवान कृष्ण की लीलाओं का गायन करना ही उनका प्रमुख उद्देश्य था। कृष्ण की बाल क्रीड़ाओं और मातृ-भावना को लेकर सूरदास ने जो मनोहारी और प्रभावशाली वर्णन किया है, वह अद्‌वितीय है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सूरदास की प्रशंसा करते हुये लिखा है, कृष्ण जन्म की आनन्द-बधाई के उपरान्त ही बाल-लीला प्रारम्भ हो जाती है।

जितने विस्तृत और विशुद्ध रूप में बाल्य जीवन का चित्रण इन्होंने किया है उतने विस्तृत रूप में और किसी कवि ने नहीं किया। शैशव से लेकर कौमार अवस्था तक के क्रम से लगे हुये न जाने कितने चित्र मौजूद हैं। उनमें केवल बाहरी रूपों और चेष्टाओं का ही विस्तृत और सूक्ष्म वर्णन नहीं है, कवि ने बालकों की अन्तः प्रकृति में भी पूरा प्रवेश किया है और अनेक बाल्यभावों की सुन्दर स्वाभाविक व्यंजना की है।

आचार्य शुक्ल ने अन्यत्र भी लिखा है

सूरदास वात्सल्य का कोना-कोना झाँक आये हैं ।

कृष्ण जन्म का समाचार सुनते ही ब्रज की गलियों में अपार आनन्द का समुद्र उमड़ पड़ता है जिसकी अभिव्यक्ति सूरदास ने एक ग्वालिन के मुख से की है------

सोभा सिंधु न अंत रही री।

नंद भवन भरि-पूरि उँमगि चलि ब्रज की बीथिन फिरति बही री।

देखी जाइ गोकुल मैं घर-घर बेचति फिरति दही री।

कहँ लगि कहौं बनाई बहुत विधि कहत न मुख सहसहु निबही री।

जसुमति उदर अगाध उदधि तें उपजीं ऐसी सबनि कही री।

सुर स्याम प्रभु इन्द्र नीलमनि ब्रज वनिता उर लाइ गही री।

यशोदा की गोद में विराजमान कृष्ण की छवि की सुन्दर अभिव्यक्ति प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने की है-------

गोद लिए जसुदा नन्दनंदहिं
पीत झहुलिया की छवि छाजति बिज्जुलता सोहति मनु कंदहिं।

इसी प्रकार यशोदा द्वारा कृष्ण को पालने में सुलाने का कितना स्वाभाविक, मार्मिक चित्र प्रस्तुत गीत में कवि ने अभिव्यक्त किया है----

यशोदा हरि पालने झुलावै।
हलरावै दुलराइ मल्हावै, जोइ-सोइ कछु गावै।
मेरे लाल को आउ निंदरिया, काहै ना आनि सुवावै।
तू काहै न बेगहिं आवै, तोको कान्ह बुलावै।
कबहुँ पलक हरि मूँद लेत हैं, कबहुँ अधर फरकावै।
सोवत जानि मौन है करहिँ, करि-करि सैन बतावै।
इति अंतर अकुलाई उठे हरि, जसुमति मधुर गावै।
जो सुख सूर अमर मुनि दुर्लभ, सो नंदभामिनी पावै।

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि ने यशोदा के माध्यम से भारतीय नारी का ही चित्र उकेरा है जो पालने में अपने लाल को सुला रही है, सोया जानकर आँखों के इशारे से सबको चुप रहने को कहती है। वहाँ से हटकर घर के और काम करना ही चाहती है कि बालक अकुलाकर उठ जाता है।

यशोदा श्रीकृष्ण को अँगुली पकड़कर चलना सिखाती हैं और श्रीकृष्ण बाल-सुलभ प्रवृत्ति के कारण डगमगाते कदमों से आगे बढ़ते हैं----------

सिखवत चलन जसोदा मैया।

अरबराइ कर पानि गहावत डगमगाइ धरैं पैंया।

माता की आवाज सुनकर, दौड़कर कृष्ण के आने का और यशोदा के गोद में लेने का चित्र प्रस्तुत गीत में अभिव्यक्त किया है-------

नंदधाम खेलत हरि डोलत।

जसुमति करति रसोई भीतर आपुन किलकत बोलत।

टेरि उठी जसुमति मोहन कौ आबहु काहै न धाइ।

बैज सुनत माता पहिचानि चले घुटरूवनि पाइ।

लै उठाइ अंचल गहि पोंछे धूरि भरी सब देह।

सूरज प्रभु जसुमति रज झारति कहाँ भरि यह खेह।

यशोदा द्वारा स्नान करने को कहने पर कन्हैया किस तरह मचलते हैं, यह चित्र प्रस्तुत गीत में अभिव्यक्त हुआ है------

जसोदा जबहिं कह्यौ अन्हवावन रोइ गए हरि लोटत री।

तेल उबटनौ लै आगे धरि लालहिं चोटत पोटत री।

मैं बलि जाऊँ न्हाउ जनि मोहन कत रोवत बिनु काजै री।

पाछै धरि राख्यौ छपाइ कै उबटन तेल समाजै री।

महरि बहुत विनती करि राखति मानत नहीं कन्हैया री।

सूर स्याम अति ही बिरूझाने सुर मुनि अंत न पैया री।

प्रायः बच्चे पिता के साथ भोजन करते हैं, तुलसीदास के राम भी दशरथ के साथ भोजन करते हैं. श्रीकृष्ण भी नन्दबाबा के साथ भोजन कर रहे हैं, भोजन करते समय बाल सुलभ चपलता का वर्णन प्रस्तुत पद में कवि ने किया है----

जैवत कान्ह नंद इक ठौरे।

कछुक खात लपटात दोऊ कर बाल केलि अति भोरे।

बरा कौर मेलत मुख भीतर मिरिच दसन टकटौरे।

तीछन लगी नैन भरि आए रोवत बाहर दौरे।

फूँकति बदन रोहिनी ठाढ़ी लिए लगाइ अँकोरे।

सूर स्याम की मधुर कौर दे कीन्हे तात निहोरे।

माता यशोदा श्रीकृष्ण को दूध पिलाने के लिये लालच देती हैं कि दूध पीने से चोटी जल्दी बड़ी हो जायेगी, इसीलिये दूध पीते समय श्रीकृष्ण उत्सुकतावश अपनी चोटी देखते जाते हैं कि चोटी बढ़ रही है या नहीं-----

मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी।
किती बार मोहिं दूध पियत भई, यह अजहुँ है छोटी।

श्रीकृष्ण को माखन चोर भी कहा जाता है, श्रीकृष्ण द्वारा माखन चोरी और मणि रचित खम्भे में अपने ही प्रतिबिंब से किये वार्तालाप का वर्णन प्रस्तुत गीत में कवि ने अभिव्यक्त किया है----------

आजु सखि मनि खंभ निकट हरि जंह गोरस को गोरी।
निज प्रतिबिंब सिखावत ज्यों सिसु, प्रगट करैं जनि चोरी।
अरध भाग आजु तैं हम तुम भली बनी है जोरी।
माखन खाहु, कतहि डारत हौ छाँड़ि देहु मति भोरी।
बाँट न लेहु सबै चाहत हौ यहै बात है थोरी।

बालक कृष्ण द्वारा चन्द्रमा को देखकर उसे प्राप्त करने के लिये मचल उठने का और हठ करने का मनोरम वर्णन कवि ने प्रस्तुत पंक्तियों में किया है------

मैया मैं तो चन्द खिलौना लैहौं।

जैहों लोटि धरनि मैं अबहिं तेरी गोद न ऐहौं।

सुरभि का पयपान न करिहौं, बेनी सिर न गुहैहौं।

ह्वै हौ पूत नन्दबाबा को तैरो सुत न कहैहौं।

आँख-मिचौनी के खेल में किस प्रकार माता यशोदा श्रीकृष्ण का पक्ष लेती हैं और किस प्रकार श्रीकृष्ण अपने निर्णय पर अडिग हैं कि श्रीदामा को ही चोर बनाना है। साथ ही पुत्र के जीतने पर माता यशोदा की हृदयग्राही खुशी का वर्णन प्रस्तुत गीत में कवि ने किया है--------

हरि तब अपनी आँख मुँदाई।
सखा सहित बलराम छुपाने जहँ तहँ गई भगाई।
कान लागि कह्यौ जननि य़शोदा वा घर में बलराम।
बलराम को आवन दैहों श्रीदामा सौं काम
दौरि-दौरि बालक सब आवत छुवत महरि कौ गात।
सब आए रहे सुबल श्रीदामा हारे अब कैं तात।
सोर पारि हरि सुबलहिं धाए गहयौ श्रीदामा जाइ।
दै दै सौंह नंदबाबा की, जननी पै लै आइ।
हँसि-हँसि तारी देत सखा सब भए श्रीदामा चोर।
सूरदास हँसि कहतिं जसोदा जीत्यौ है सुत मोर।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उचित ही लिखा है-

यशोदा के बहाने सूर ने मातृ ह्रदय का ऐसा स्वाभाविक,
सरल और ह्रदयग्राही चित्र खींचा है कि आश्चर्य होता है।

कृष्ण बड़े हो गये हैं बाहर सखाओं के साथ खेलना ही शुरू नहीं कर दिया वरन् श्रीकृष्ण के मन में गाय दुहने की उत्सुकता भी पैदा हो गयी है। इसीलिये ग्वालिनी के संग बैठकर गाय का दुहना देखते हैं और कहते हैं------

धेनु दुहत हरि देखत ग्वालिनी।
आपुन बैठ गए तिनके संग सिखवहु मोहि कहत गोपालनि।

और फिर एक दिन गाय चराने को मचलने लगते हैं----------

मैया हौं गाय चरावन जैहौं।
तू कहत महरि नन्दाबाबा सौं बड़ो भयो न डरैहौं।

सूरदास रचित काव्य में राधा और कृष्ण के बीच प्रेम का विकास शनैः शनैः स्वाभाविक ढ़ंग से हुआ है जो शैशवोचित चपलता से प्रारम्भ होता है और धीरे-धीरे अनुराग बढ़ता जाता है--------

श्याम का राधा से पूछना-

बूझत श्याम, कौन तू गौरी।

कहाँ रहत, काकी तू बेटी, देखी नाहिं कहूँ ब्रज खोरी।

और राधा का उत्तर देना-

काहे को हम ब्रज तन आवति, खेलत रहत आपनि पौरी।

सुनति रहति श्रवनन नंद ढोता करत रहत माखन दधि चोरी।

ऐसे ही प्रस्तुत उदाहरण में आपसी नोंक-झोंक का वर्णन कवि ने किया है---

श्रीकृष्ण का गाय दुहना-

धेनु दुहत अति ही रति बाढ़ी।

एक धार दोहनि पहुँचावत, एक धार जहँ प्यारी ठाढ़ी।

और इस पर राधा का उत्तर-

तुम पै कौन दुहावै गैया।

इत चितवत उत धार चलावत, एहि सिखयो है मैया।

जिस रागात्मकता के साथ सूरदासजी ने श्रीकृष्ण के बाल-जीवन की विविध लीलाओं को अभिव्यक्त किया है उसी प्रकार श्रीकृष्ण और बलराम के मथुरा गमन पर वात्सल्य-वियोग का वर्णन भी किया है। सूरदास द्वारा वर्णित प्रवासजन्य विरह का चित्रण उभयपक्षीय है. कृष्ण के मथुरा गमन से नन्द-यशोदा, गोप-गोपियाँ, राधारानी ही दुःखी नहीं है, वरन् कृष्ण भी मथुरा में अनन्त वैभव-विलास में रहते हुये भी माता यशोदा व ब्रज-वासियों को नहीं भुला पाते। श्रीकृष्ण तभी तो नन्द के ह्रदय को कठोर बताते हुये कहते हैं----------

कहियो नन्द कठोर भये।

हम दोउ वीरैं डारि परघरैं मानों थाति सौंपि गए।

ऐसे ही माता यशोदा की याद करते हुये श्रीकृष्ण कहते हैं-----

जा दिन ते हम तुम तें बिछुरे काहु न कह्यौ कन्हैया।

कबहुँ प्रात न कियो कलेवा साँझ न पीनी छैया।

कान्हा की याद में माता यशोदा का ह्रदय भी व्यथित हो रहा है--------

जद्यपि मन समुझावत लोग।

शूल होत नवनीत देखिकै मोहन के मुख जोग।

और माता यशोदा पथिकों के हाथ संदेश भेजती हैं----

संदेशो देवकी सौ कह्यो।

हौं तो धाय तिहारे सुत की कृपा करत ही रहियौ।

वास्तव में सूरदासजी ने श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओं और मातृभावना को लेकर जिस रागात्मकता के साथ वात्सल्य रस की धारा प्रवाहित की है, उससे वात्सल्य भाव को रसों में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है।

काव्य-रस एव समीक्षा

सूरदास जी वात्सल्यरस के सम्राट माने गए हैं। उन्होंने श्रृंगार और शान्त रसो का भी बड़ा मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। बालकृष्ण की लीलाओं को उन्होंने अन्तःचक्षुओं से इतने सुन्दर, मोहक, यथार्थ एवं व्यापक रुप में देखा था, जितना कोई आँख वाला भी नहीं देख सकता। वात्सल्य का वर्णन करते हुए वे इतने अधिक भाव-विभोर हो उठते हैं कि संसार का कोई आकर्षण फिर उनके लिए शेष नहीं रह जाता।

सूर ने कृष्ण की बाललीला का जो चित्रण किया है, वह अद्‌वितीय व अनुपम है। डॉक्टर हजारी प्रसाद द्‌विवेदी जी ने लिखा है - ""संसार के साहित्य की बात कहना तो कठिन है, क्योंकि वह बहुत बड़ा है और उसका एक अंश मात्र हमारा जाना है, परन्तु हमारे जाने हुए साहित्य में इनी तत्परता, मनोहारिता और सरसता के साथ लिखी हुई बाललीला अलभ्य है।

बालकृष्ण की एक-एक चेष्टा के चित्रण में कवि कमाल की होशियारी और सूक्ष्म निरीक्षण का परिचय देता है। न उसे शब्दों की कमी होती है, न अलंकार की, न भावो की, न भाषा की।

.....अपने-आपको पिटाकर, अपना सर्व निछावर करके जो तन्मयता प्राप्त होती है वही श्रीकृष्ण की इस बाल-लीला को संसार का अद्‌वितीय काव्य बनाए हुए है।"

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी इनकी बाललीला-वर्णन की प्रशंसा में लिखा है - ""गोस्वामी तुलसी जी ने गीतावली में बाललीला को इनकी देखा-देखी बहुत विस्तार दिया सही, पर उसमें बाल-सुलभ भावों और चेष्टाओं की वह प्रचुरता नहीं आई, उसमें रुप-वर्णन की ही प्रचुरता रही। बाल-चेष्टा का निम्न उदाहरण देखिए -

मैया कबहिं बढ़ेगी चोटी ?
कितिक बार मोहि दूध पियत भई,
यह अजहूँ है छोटी ।
तू जो कहति "बल' की बेनी
ज्यों ह्मववै है लाँबी मोटी ।।

खेलत में को काको गोसैयाँ
जाति-पाँति हमतें कछु नाहिं,
न बसत तुम्हारी छैयाँ ।
अति अधिकार जनावत यातें,
अधिक तुम्हारे हैं कछु गैयाँ ।

सोभित कर नवनीत लिए ।
घुटरुन चलत रेनु तन मंडित,
मुख दधि लेप किए ।।

सूर के शान्त रस वर्णनों में एक सच्चे हृदय की तस्वीर अति मार्मिक शब्दों में मिलती है।

कहा करौ बैकुठहि जाय ?

जहँ नहिं नन्द, जहाँ न जसोदा,

नहिं जहँ गोपी ग्वाल न गाय ।

जहँ नहिं जल जमुना को निर्मल

और नहीं कदमन की छाँय ।

परमानन्द प्रभु चतुर ग्वालिनी,

ब्रजरज तजि मेरी जाय बलाय ।

कुछ पदों के भाव भी बिल्कुल मिलते हैं, जैसे –

अनुखन माधव माधव सुमिरइत सुंदर भेलि मधाई ।
ओ निज भाव सुभावहि बिसरल अपने गुन लुबधाई ।।

भोरहि सहचरि कातर दिठि हेरि छल छल लोचन पानि ।
अनुखन राधा राधा रटइत आधा आधा बानि ।।
राधा सयँ जब पनितहि माधव, माधव सयँ जब राधा ।
दारुन प्रेम तबहि नहिं टूटत बाढ़त बिरह क बाधा ।।
दुहुँ दिसि दारु दहन जइसे दगधइ,आकुल कोट-परान ।
ऐसन बल्लभ हेरि सुधामुखि कबि विद्यापति भान ।।

इस पद्य का भावार्थ यह है कि प्रतिक्षण कृष्ण का स्मरण करते करते राधा कृष्णरुप हो जाती हैं और अपने को कृष्ण समझकर राधा क वियोग में "राधा राधा' रटने लगती हैं। फिर जब होश में आती हैं तब कृष्ण के विरह से संतप्त होकर फिर 'कृष्ण कृष्ण' करने लगती हैं।

सुनौ स्याम ! यह बात और काउ क्यों समझाय कहै ।
दुहुँ दिसि की रति बिरह बिरहिनी कैसे कै जो सहै ।।
जब राधे, तब ही मुख "माधौ माधौ' रटति रहै ।
जब माधो ह्मवै जाति, सकल तनु राधा - विरह रहै ।।
उभय अग्र दव दारुकीट ज्यों सीतलताहि चहै ।
सूरदास अति बिकल बिरहिनी कैसेहु सुख न लहै ।।

सूरसागर में जगह जगह दृष्टिकूटवाले पद मिलते हैं। यह भी विद्यापति का अनुकरण है। "सारंग' शब्द को लेकर सूर ने कई जगह कूट पद कहे हैं। विद्यापति की पदावली में इसी प्रकार का एक कूट देखिए –

सारँग नयन, बयन पुनि सारँग,
सारँग तसु समधाने ।
सारँग उपर उगल दस सारँग
केलि करथि मधु पाने ।।

पच्छिमी हिन्दी बोलने वाले सारे प्रदेशों में गीतों की भाषा ब्रज ही थी। दिल्ली के आसपास भी गीत ब्रजभाषा में ही गाए जाते थे, यह हम खुसरो (संवत् १३४०) के गीतों में दिखा आए हैं। कबीर (संवत् १५६०) के प्रसंग में कहा जा चुका है कि उनकी "साखी' की भाषा तो""सधुक्कड़ी' है, पर पदों की भाषा काव्य में प्रचलित व्रजभाषा है। यह एक पद तो कबीर और सूर दोनों की रचनाओं के भीतर ज्यों का त्यों मिलता है -

है हरिभजन का परवाँन ।
नीच पावै ऊँच पदवी,
बाजते नीसान ।
भजन को परताप ऐसो
तिरे जल पापान ।

अधम भील, अजाति गनिका
चढ़े जात बिवाँन ।।
नवलख तारा चलै मंडल,
चले ससहर भान ।
दास धू कौं अटल
पदवी राम को दीवान ।।
निगम जामी साखि बोलैं
कथैं संत सुजान ।
जन कबीर तेरी सरनि आयौ,
राखि लेहु भगवान ।।
(कबीर ग्रंथावली)

है हरि-भजन को परमान ।
नीच पावै ऊँच पदवी,
बाजते नीसान ।
भजन को परताप ऐसो
जल तरै पाषान ।
अजामिल अरु भील गनिका
चढ़े जात विमान ।।
चलत तारे सकल, मंडल,
चलत ससि अरु भान ।
भक्त ध्रुव की अटल पदवी
राम को दीवान ।।
निगम जाको सुजस गावत,
सुनत संत सुजान ।
सूर हरि की सरन आयौ,
राखि ले भगवान ।।
(सूरसागर)

कबीर की सबसे प्राचीन प्रति में भी यह पद मिलता है, इससे नहीं कहा जा सकता है कि सूर की रचनाओं के भीतर यह कैसे पहुँच गया।

राधाकृष्ण की प्रेमलीला के गीत सूर के पहले से चले आते थे, यह तो कहा ही जा चुका है। बैजू बावरा एक प्रसिद्ध गवैया हो गया है जिसकी ख्याति तानसेन के पहले देश में फैली हुई थी। उसका एक पद देखिए -

मुरली बजाय रिझाय लई मुख मोहन तें ।
गोपी रीझि रही रसतानन सों सुधबुध सब बिसराई ।
धुनि सुनि मन मोहे, मगन भईं देखत हरि आनन ।
जीव जंतु पसु पंछी सुर नर मुनि मोहे, हरे सब के प्रानन ।
बैजू बनवारी बंसी अधर धरि बृंदाबन चंदबस किए सुनत ही कानन ।।

जिस प्रकार रामचरित का गान करने वाले भक्त कवियों में गोस्वामी तुलसीदासजी का स्थान सर्वश्रेष्ठ है उसी प्रकार कृष्णचरित गाने वाले भक्त कवियों में महात्मा सूरदासजी का। वास्तव में ये हिंदी काव्यगगन के सूर्य और चंद्र हैं। जो तन्मयता इन दोनों भक्तशिरोमणि कवियों की वाणी में पाई जाती है वह अन्य कवियों में कहां। हिन्दी काव्य इन्हीं के प्रभाव से अमर हुआ। इन्हीं की सरसता से उसका स्रोत सूखने न पाया।

उत्तम पद कवि गंग के,
कविता को बलबीर ।
केशव अर्थ गँभीर को,
सुर तीन गुन धीर ।।

इसी प्रकार यह दोहा भी बहुत प्रसिद्ध है –

किधौं सूर को सर लग्यो,
किधौं सूर की पीर ।
किधौं सूर को पद लग्यो,
बेध्यो सकल सरीर ।।

यद्यपि तुलसी के समान सूर का काव्यक्षेत्र इतना व्यापक नहीं कि उसमें जीवन की भिन्न भिन्न दशाओं का समावेश हो पर जिस परिमित पुण्यभूमि में उनकी वाणी ने संचरण किया उसका कोई कोना अछूता न छूटा। श्रृंगार और वात्सल्य के क्षेत्र में जहाँ तक इनकी दृष्टि पहुँची वहाँ तक ओर किसी कवि की नहीं।

काहे को आरि करत मेरे मोहन !
यों तुम आँगन लोटी ?
जो माँगहु सो देहुँ मनोहर,
य है बात तेरी खोटी ।।
सूरदास को ठाकुर ठाढ़ो
हाथ लकुट लिए छोटी ।।

सोभित कर नवनीत लिए ।
घुटुरुन चलत रेनु - तन - मंडित,
मुख दधि-लेप किए ।।

सिखवत चलन जसोदा मैया ।
अरबराय कर पानि गहावति,
डगमगाय धरै पैयाँ ।।

पाहुनि करि दै तरक महयौ ।
आरि करै मनमोहन मेरो,
अंचल आनि गहयो ।।
व्याकुल मथत मथनियाँ रीती,
दधि भ्वै ढरकि रहयो ।।

बालकों के स्वाभाविक भावों की व्यंजना के न जाने कितने सुंदर पद भरे पड़े हैं। "स्पर्धा' का कैसा सुंदर भाव इस प्रसिद्ध पद में आया है -

मैया कबहिं बढ़ैगी चीटी ?
कितिक बार मोहिं दूध पियत भई,
वह अजहूँ है छोटी ।
तू जो कहति "बल' की बेनी ज्यों
ह्मवै है लाँबी मोटी ।।

इसी प्रकार बालकों के क्षोभ के यह वचन देखिए –

खेलत में को काको गोसैयाँ ?
जाति पाँति हम तें कछु नाहिं,
न बसत तुम्हारी छैयाँ ।
अति अधिकार जनावत यातें,
अधिक तुम्हारे हैं कछु गैयाँ ।।

वात्सल्य के समान ही श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का इतना प्रचुर विस्तार और किसी कवि में नहीं। गोकुल में जब तक श्रीकृष्ण रहे तब तक का उनका सारा जीवन ही संयोग पक्ष है।

करि ल्यौ न्यारी,
हरि आपनि गैयाँ ।
नहिंन बसात लाल कछु तुमसों
सबै ग्वाल इक ठैयाँ ।

धेनु दुहत अति ही रति बाढ़ी ।
एक धार दोहनि पहुँचावत,
एक धार जहँ प्यारी ठाढ़ी ।।
मोहन कर तें धार चलति पय
मोहनि मुख अति ह छवि बाढ़ी ।।

राधा कृष्ण के रुप वर्णन में ही सैकड़ों पद कहे गए हैं निमें उपमा, रुपक और उत्प्रेक्षा आदि की प्रचुरता है। आँख पर ही न जाने कितनी उक्तियाँ हैं

देखि री ! हरि के चंचल नैन।
खंजन मीन मृगज चपलाई,
नहिं पटतर एक सैन ।।
राजिवदल इंदीवर, शतदल,
कमल, कुशेशय जाति ।
निसि मुद्रित प्रातहि वै बिगसत,
ये बिगसे दिन राति ।।
अरुन असित सित झलक पलक प्रति,
को बरनै उपमाय ।
मनो सरस्वति गंग जमुन
मिलि आगम कीन्हों आय ।।

नेत्रों के प्रति उपालंभ भी कहीं कहीं बड़े मनोहर हैं -

सींचत नैन-नीर के, सजनी ! मूल पतार गई ।
बिगसति लता सभाय आपने छाया सघन भई ।।
अब कैसे निरुवारौं, सजनी ! सब तन पसरि छई ।

सूरसागर का सबसे मर्मस्पर्शी और वाग्वैदग्ध्यपूर्ण अंश भ्रमरगीत है जिसमें गोपियों की वचनवक्रता अत्यंत मनोहारिणी है। ऐसा सुंदर उपालंभ काव्य और कहीं नहीं मिलता। उद्धव तो अपने निर्गुण ब्रह्मज्ञान और योग कथा द्वारा गोपियों को प्रेम से विरत करना चाहते हैं और गोपियाँ उन्हें कभी पेट भर बनाती हैं, कभी उनसे अपनी विवशता और दीनता का निवेदन करती हैं -

उधो ! तुम अपनी जतन करौ
हित की कहत कुहित की लागै,
किन बेकाज ररौ ?
जाय करौ उपचार आपनो,
हम जो कहति हैं जी की ।
कछू कहत कछुवै कहि डारत,
धुन देखियत नहिं नीकी ।

इस भ्रमरगीत का महत्त्व एक बात से और बढ़ गया है। भक्तशिरोमणि सूर ने इसमें सगुणोपासना का निरुपण बड़े ही मार्मिक ढंग से, हृदय की अनुभूति के आधार पर तर्कपद्धति पर नहीं - किया है। सगुण निर्गुण का यह प्रसंग सूर अपनी ओर से लाए हैं। जबउद्धव बहुत सा वाग्विस्तार करके निर्गुण ब्रह्म की उपासना का उपदेश बराबर देते चले जाते हैं, तब गोपियाँ बीच में रेककर इस प्रकार पूछती हैं -

निर्गुन कौन देस को बासी ?
मधुकर हँसि समुझाय,
सौह दै बूझति साँच, न हाँसी।

और कहती हैं कि चारों ओर भासित इस सगुण सत्ता का निषेध करक तू क्यों व्यर्थ उसके अव्यक्त और अनिर्दिष्ट पक्ष को लेकर यों ही बक बक करता है।

सुनिहै कथा कौन निर्गुन की,
रचि पचि बात बनावत ।
सगुन - सुमेरु प्रगट देखियत,
तुम तृन की ओट दुरावत ।।

उस निर्गुण और अव्यक्त का मानव हृदय के साथ भी कोई सम्बन्ध हो सकता है, यह तो बताओ -

रेख न रुप, बरन जाके नहिं ताको हमैं बतावत ।
अपनी कहौ, दरस ऐसे को तु कबहूँ हौ पावत ?
मुरली अधर धरत है सो, पुनि गोधन बन बन चारत ?
नैन विसाल, भौंह बंकट करि देख्यो कबहुँ निहारत ?
तन त्रिभंग करि, नटवर वपु धरि, पीतांबर तेहि सोहत ?
सूर श्याम ज्यों देत हमैं सुख त्यौं तुमको सोउ मोहत ?

अन्त में वे यह कहकर बात समाप्त करती हैं कि तुम्हारे निर्गुण से तो हमें कृष्ण के अवगुण में ही अधिक रस जान पड़ता है -

ऊनो कर्म कियो मातुल बधि,
मदिरा मत्त प्रमाद ।
सूर श्याम एते अवगुन में
निर्गुन नें अति स्वाद ।।

सूर और वात्सल्य रस

महाकवि सूर को बाल-प्रकृति तथा बालसुलभ चित्रणों की दृष्टि से विश्व में अद्‌वितीय माना गया है। उनके वात्सल्य वर्णन का कोई साम्य नहीं, वह अनूठा और बेजोड है। बालकों की प्रवृति और मनोविज्ञान का जितना सूक्ष्म व स्वाभाविक वर्णन सूरदास जी ने किया है वह हिन्दी के किसी अन्य कवि या अन्य भाषाओं के किसी कवि ने नहीं किया है। शैशव से लेकर कौमार अवस्था तक के क्रम से लगे न जाने कितने चित्र सूर के काव्य में वर्णित हैं।

वैसे तो श्रीकृष्ण के बाल-चरित्र का वर्णन श्रीमद्भागवत गीता में भी हुआ है। और सूर के दीक्षा गुरू वल्लभाचार्य श्रीकृष्ण के बालरूप के ही उपासक थे जबकि श्रीकृष्ण के गोपीनाथ वल्लभ किशोर रूप को स्वामी विट्ठलनाथ के समय मान्यता मिली। अत: सूर के काव्य में कृष्ण के इन दोनों रूपों की विस्तृत अभिव्यंजना हुई।

सूर की दृष्टि में बालकृष्ण में भी परमब्रह्म अवतरित रहे हैं, उनकी बाल-लीलाओं में भी ब्रह्मतत्व विद्यामान है जो विशुध्द बाल-वर्णन की अपेक्षा, कृष्ण के अवतारी रूप का परिचायक है। तभी तो, कृष्ण द्वारा पैर का अंगूठा चूसने पर तीनों लोकों में खलबली मच जाती है -

कर पग गहि अंगूठा मुख मेलत
प्रभु पौढे पालने अकेले हरषि-हरषि अपने संग खेलत
शिव सोचत, विधि बुध्दि विचारत बट बाढयो सागर जल खेलत
बिडरी चले घन प्रलय जानि कैं दिगपति, दिगदंती मन सकेलत
मुनि मन मीत भये भव-कपित, शेष सकुचि सहसौ फन खेलत
उन ब्रजबासिन बात निजानी। समझे सूर संकट पंगु मेलत।

दही बिलौने की हठ को देख कर वासुकी और शिव भयभीत हो जाते हैं -

मथत दधि, मथनि टेकि खरयों
आरि करत मटुकि गहि मोहन
बासुकी,संभु उरयो।

कृष्ण विष्णु के अवतार हैं अत: वे बाल रूप में भी असुरों का सहज ही वध करते वर्णित किये गए हैं। कंस द्वारा भेजी गई पूतना के कपट को वे अपने नवजात रूप में ही भा/प उसके विषयुक्त स्तन पान करते करते उसके प्राण हर लेते हैं।

कपट करि ब्रजहिं पूतना आई
अति सुरूप विष अस्तन लाए, राजा कंस पठाई
कर गहि छरि पियावति, अपनी जानत केसवराई
बाहर व्है के असुर पुकारी, अब बलि लेत छुहाई
गई मुरछाह परी धरनी पर, मनौ भुवंगम खाई।

सूर के वात्सल्य वर्णन में यद्यपि उनके विष्णु अवतार होने की झलके तो अवश्य मिलती है, तथापि ये वर्णन किसी भी माँ के अपने पुत्र के प्रति वात्सल्य का प्रतिनिधित्व करते हैं - यशोदा जी श्री कृष्ण को पालने में झुला रही हैं और उनको हिला-हिला कर दुलराती हुई कुछ गुनगुनाती भी जा रही हैं जिससे कि कृष्ण सो जाएं।

जसोदा हरि पालने झुलावै
हलरावे, दुलराई मल्हावे, जोई-सोई कछु गावै
मेरे लाल को आउ निंदरिया, काहै न आनि सुवावै
तू काहैं नहिं बेगहीं आवै, तोको कान्ह बुलावैं।

माँ की लोरी सुन कर कृष्ण अपनी कभी पलक बन्द कर लेते हैं, कभी होंठ फडक़ाते हैं। उन्हें सोता जान यशोदा भी गुनगुनाना बंद कर देती हैं और नन्द जी को इशारे से बताती हैं कि कृष्ण सो गए हैं। इस अंतराल में कृष्ण अकुला कर फिर जाग पडते हैं, तो यशोदा फिर लोरी गाने लगती हैं।

कबहूँ पलक हरि मूँद लेत हैं, कबहूँ अधर फरकावै।
सोवत जानि मौन व्है रहि रहि, करि करि सैन बतावे।
इहिं अंतर अकुलाई उठे हरि, जसुमति मधुर गावैं।

प्रस्तुत पद में सूर ने अपने अबोध शिशु को सुलाती माता का बडा ही सुन्दर चित्रण किया है।

माँ के मन की लालसा व स्वप्नों को भी सूर ने बडे ज़ीवंत ढंग से अपने पदो में उतारा है । जैसे -

जसुमति मन अभिलाष करै।
कब मेरो लाल घुटुरुवनि रैंगे, कब धरनी पग द्वेक धरै।
कब द्वै दाँत दूध कै देखौं, कब तोतैं मुख बचन झरैं।
कब नन्दहिं बाबा कहि बोले, कब जननी कहिं मोहिं ररै।

सुत मुख देखि जसोदा फूली
हरषति देखि दूध की दँतिया, प्रेम मगन तन की सुधि भूली।
बाहर तैं तब नन्द बुलाए, देखौ धौं सुन्दर सुखदाई।
तनक-तनक सी दूध दंतुलिया, देखौ, नैन सफल करो आई।

श्री कृष्ण के दाँत निकलने पर यशोदा माता की खुशी का पारावार नहीं रहता, वे नन्द को बुला कर उनके दूध के दाँत देख कर अपने नेत्र सफल करने के लिये कहती हैं।

हरि किलकत जसुमति की कनियाँ।
मुख में तीनि लोक दिखाए, चकित भई नन्द-रनियाँ।
घर-घर हाथ दिखावति डोलति, बाँधति गरै बघनियाँ।
सूर स्याम को अद्भुत लीला नहिं जानत मुनि जनियाँ।

माँ को अपने लाडले पर बडा नाज है सो बडी चिन्तित रहती है कि उसे किसी की नजर ना लग जाए। यही कारण है कि जब एक दिन माँ की गोद में अलसाते कान्हा ने जोर की जमुहाई लेकर अपने मुख में तीनों लोकों के दर्शन करवा दिये तो माँ डर गई और उनका हाथ ज्योतिषियों को दिखाया और बघनखे का तावीज ग़ले में डाल दिया।

सोभित कर नवनीत लिये।
घुटुरुनि चलत रेनु तन-मण्डित, मुख दधि लेप किये ।
कंठुला कंठ, ब्रज केहरि-नख, राजत रुधिर हिए।
धन्य सूर एकौ पल इहिं सुख, का सत कल्प जिए।

कृष्ण घुटनों के बल चलने लगे हैं, उनके हाथों में मक्खन है, मुँह पे दही लगा है, शरीर मिट्टी से सना है। मस्तक पर गोरोचन का तिलक है और उनके घुंघराले बाल गालों पर बिखरे हैं। गले में बघनखे का कंठुला शोभायमान है।कृष्ण के इस सौंदर्य को एक क्षण के लिये देखने भर का सुख भी सात युगों तक जीने के समान है।

किलकत कान्ह घुटुरुवनि आवत ।
मनिमय कनक नन्द कैं आँगन, बिंब पकरिबै धावत।
कबहुँ निरखि हरि आपु छाँह कौं, कर सौं पकरन चाहत
किलकि हांसत राजत द्वै दतियाँ, पुनि-पुनि तिहिं अवगाहत।
बाल-दसा सुख निरखि जसोदा, पुनि-पुनि नन्द बुलावत।
अंचरा तर लै ढाँकि, सूर के प्रभु कौ दूध पियावत।

नन्द जी का आँगन रत्नजटित स्वर्ण निर्मित है। इसमें जब कान्हा घुटनों के बल चलते हैं तो उसमें अपनी परछांई उन्हें दिखती है, जिसे वे पकडने की चेष्टा करते घूमते हैं। ऐसा करते हुए जब वे किलकारी मार कर हँसते हैं तो उनके दूध के दाँत चमकने लगते हैं और इस स्वर्णिम दृश्य को दिखाने के लिये यशोदा माँ बार-बार नन्द बाबा को बुला लाती हैं।

चलत देखि जसुमति सुख पावै।
ठुमकि-ठुमकि पग धरनि रेंगत, जननी देखि दिखावै।
देहरि लौं चलि जात, बहुरि फिरि-फिरि इतहिं कौ आवै।
गिरि-गिरि परत, बनत नहिं लाँघत सुर-मुनि सोच करावै।

कृष्ण को गिरते-पडते, ठुमुक-ठुमुक चलते देख यशोदा माँ को अपार सुख मिलता है।

धीरे-धीरे कृष्ण बडे होते हैं। माँ कोई भी काम करती है तो छोटे बच्चे भी उस काम को करने की चेष्टा करते हैं और माँ के काम में व्यवधान डालते हैं। माँको दूध बिलोते देख कृष्ण मथानी पकड लेते हैं। यशोदा उनकी मनुहार करते हुए कहती है।

नन्द जू के बारे कान्ह, छाँडि दे मथनियाँ।
बार-बार कहति मातु जसुमति नन्द रनियाँ।
नैकु रहौ माखन देऊँ मेरे प्रान-धनियाँ।
अरि जनि करौं, बलि-बलि जाउं हो निधनियाँ।

श्री कृष्ण अन्य बच्चों के समान ही माँ से मक्खन रोटी माँगते हुए आँगन में लोट-लोट जाते हैं। यशोदा समझाती हैं -

गोपालराई दधि मांगत अरु रोटी।
माखन सहित देहि मेरी मैया, सुकोमल मोटी।
कत हौ मारी करत हो मेरे मोहन, तुम आंगन में लोटी।
जो चाहौ सौ लेहु तुरतही छाडौ यह मति खोटी।
करि मनुहारि कलेऊ दीन्हौं, मुख चुपरयौ अरु चोटी।
सूरदास कौ ठाकुर ठठौ, हाथ लकुटिया छोटी।

कृष्ण चाहते हैं कि जल्दी ही उनकी चोटी बलराम भैया जितनी लम्बी और मोटी हो जाए। माँ यशोदा को उन्हें दूध पिलाने का अच्छा अवसर मिल जाता है और वे कहती हैं यदि तुम दूध पी लोगे तो तुम्हारी चोटी बलराम जितनी लम्बी और मोटी हो जाएगी। बालकृष्ण दो तीन बार तो माँ की बातों में आ जाते हैं फिर माँ से झगडते हैं कि तू मुझे बहाने बना कर दूध पिलाती रही देख मेरी चोटी तो वैसी है, चोटी दूध से नहीं माखन-रोटी से बढती है।

मैया कबहिं बढैगी चोटी।
किती बार मोहि दूध पियत भई, यह अजहूँ छोटी।
तू जो कहति बल की बेनी ज्यौं, व्है लांबी मोटी।
काढत-गुहत न्हवावत जैसे नागिनी-सी भुई लोटी।
काचौ दूध पियावत पचि-पचि, देति ना माखन रोटी।
सूरज चिरजीवी दोउ भैया, हरि-हलधर की जोटी।

प्राय: बच्चों के द्वारा यह पूछने पर कि मैं कहाँ से आया हूँ, उन्हें यह उत्तर दिया जाता है कि तुम्हें किसी कुंजडिन या नटनी से खरीदा गया है या मोल लिया है। यहाँ बलराम बडे हैं और वे कृष्ण को ये कहके चिढाते रहते हैं कि तुम माता यशोदा के पुत्र नहीं तुम्हें मोल लिया गया है। अपने कथन को सिध्द करने के लिये वे तर्क भी देते हैं कि बाबा नंद भी गोरे हैं, माता यशोदा भी गोरी हैं तो तुम साँवले क्यों हो? अत: तुम माता यशोदा के पुत्र कैसे हो सकते हो? कृष्ण रूआँआसे होकर माँ से शिकायत करते हैं।

मैया मोहे दाऊ बहुत खिजायौ।
मोसौं कहत मोल को लीन्हो तोहि जसुमति कब जायौ।
कहा करौ इहि रिस के मारै, खेलन को नहिं जात।
पुनि-पुनि कहत है कौन है माता, कौ है तेरो तात।
गोरे नन्द जसोदा गोरी, तू कत स्याम शरीर।
चुटकी दै दै हँसत ग्वाल सब, सिखै देत रघुबीर।

फिर बाल सुलभर् ईष्या की बातें कह कर कि तू भी मुझको ही पीटती है, दाऊ पर जरा भी गुस्सा नहीं होती, कृष्ण माँ का मन रिझा लेते हैं।

तू मोहि को मारन सीखी, दाउहिं कबहूँ न खीजे।

इस पर माँ अपने बालकिशन को यह कह कर मनाती है -

मोहन मुख रिस की ये बातें, जसुमति सुनि-सुनि रीझै।
सुनहूँ कान्ह बलभद्र चबाई, जनमत ही कौ धूत।
सूर स्याम मोहिं गोधन की सौं, हौं माता तू पूत।

यहाँ प्रस्तुत चित्रण में पिता बच्चों के साथ भोजन करना चाहते हैं, किन्तु बच्चे खेलने की धुन में घर ही नहीं आते -

हार कौं टेरित हैं नन्दरानी।
बहुत अबार भई कँह खेलत रहे, मेरे सारंग पानी।
सुनतहिं टेरि, दौरि तँह आए, कबसे निकसे लाल।
जेंवत नहीं नन्द तुम्हरै बिन बेगि चल्यौ गोपाल।
स्यामहिं लाई महरि जसोदा, तुरतहिं पाइं पखारि।
सूरदास प्रभु संग नन्द कैं बैठे हैं दोउ बारै।

सूर वात्सल्यभाव और बालसुलभ बातों की अंतरंग तहों तक अपने पदों के द्वारा पहुँच गए हैं। सूर जैसे एक जन्मांध व्यक्ति के लिये यह सब दिव्यदृष्टि जैसा अनुभव रहा होगा।

यशोदा के वात्सल्य भाव का सूर ने उन पदों में बडा अच्छा चित्रण किया है जिसमें कृष्ण ब्रज की गलियों में घर घर जाकर दही-माखन चुराते हैं, बर्तन फोड ड़ालते हैं और स्त्रियाँ आकर उनकी शिकायत करती हैं, किन्तु यशोदा उनकी बात अनसुनी कर देती हैं, और बालकृष्ण का ही पक्ष लेती हुई कहती हैं -

अब ये झूठहु बोलत लोग।
पाँच बरस और कछुक दिननि को, कब भयौ चोरी जोग।
इहिं मिस देखन आवति ग्वालिनी, मुँह फारे जु गँवारि।
अनदोषे कौ दोष लगावति, दहि देइगौ टारि।

अपने बच्चे का पक्ष लेते हुए यशोदा सोचती हैं, जब मेरा बच्चा इतना छोटा है तो उसका हाथ छींके तक कैसे पहुँच सकता हैं?

कैसे करि याकि भुज पहुँची, कौन वेग ह्यौ आयौ।

इस पर गोपियाँ उसे समझाती हैं

ऊखल उपर अग्नि, पीठि दै, तापर सखा चढायौ।
जो न पत्याहु चलो संग जसुमति, देखो नैन निहारि।
सूरदास प्रभु नेकहुँ न बरजौ, मन में महरि विचारि।

माँ का भी मनोविज्ञान सूर से अछूता नहीं रहा। वह माँ जो स्वयं लाख डाँट ले पर दूसरों द्वारा की गई अपने बालक की शिकायत या डाँट वह सह नहीं सकती। यही हाल सूर की जसुमति मैया का है।

जब कृष्ण और बलराम को मथुरा बुलाया जाता है, तो उनके अनिष्ट की आशंका से उनका मन कातर हो उठता है। माता को पश्चाताप है कि जब कृष्ण ब्रज छोड मथुरा जा रहे थे तब ही उनका हृदय फट क्यों न गया।

छाँडि सनेह चले मथुरा कत दौरि न चीर गह्यो।
फटि गई न ब्रज की धरती, कत यह सूल सह्यो।

इस पर नन्द स्वयं व्यथित हो यशोदा पर अभियोग लगाते हैं कि तू बात-बात पर कान्हा की पिटाई कर देती थी सो रूठ कर वो मथुरा चला गया है -

तब तू मारि बोई करत।
रिसनि आगै कहै जो धावत, अब लै भाँडे भरति
रोस कै कर दाँवरी लै फिरति घर-घर घरति।
कठिन हिय करि तब ज्यौं बंध्यौ, अब वृथा करि मरत।

एक ओर नन्द की ऐसी उपालम्भ पूर्ण उक्तियाँ हैं तो दूसरी ओर यशोदा भी पुत्र की वियोगजन्य झुंझलाहट से खीज कर नन्द से कहती है।

नन्द ब्रज लीजै ठोकि बजाय।

देहु बिदा मिलि जाहिं मधुपुरी जँह गोकुल के राय।

अब यशोदा पुत्र प्रेम के अधीन देवकी को संदेश भिजवाती हैं कि ठीक है कृष्ण राजभवन में रह रहे हैं, उन्हें किसी बात की कमी नहीं होगी पर कृष्ण को तो सुबह उठ कर मक्खन-रोटी खाने की आदत है। वे तेल, उबटन और गर्म पानी देख कर भाग जाते हैं। मैं तो कृष्ण की मात्र धाय ही हूँ पर चिंतित हूँ वहाँ मेरा पुत्र संकोच न करता हो।

संदेसो देवकी सौं कहियौ।

हौं तो धाय तिहारे सुत की कृपा करत ही रहियो।

उबटन तेल और तातो जल देखत ही भजि जाते।

जोई-जोई माँगत सोई-सोई देती करम-करम करि न्हाते।

तुम तो टेव जानतिहि व्है हो, तऊ मौहि कहि आवै।

प्रात उठत मेरे लाल लडैतेंहि माखन रोटी खावै।

यह कहना अतिशयोक्ति नहीं कि बाल मनोविज्ञान उसके हाव-भाव और क्रीडाओं के चित्रण तथा जननी-जनक के वात्सल्य भाव की व्यंजना के क्षेत्र में सूर हिन्दी साहित्य ही नहीं अपितु विश्व साहित्य के एक बेजोड क़वि हैं।

धन्यवाद